International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 16-05-2026, Accepted: 16-06-2026, Published: 01-07-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 1-3

कृष्णा सोबती का विशिष्ट यात्रा साहित्य: बुद्ध का कमंडल लद्दाख़

दीप्ति डिगल[1], डॉ. स्नेहलता दास[2]
[1] शोधार्थी, हिन्दी विभाग, रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, विद्या विहार, भुवनेश्वर, ओड़िशा, भारत
[2] विभागाध्यक्षा, हिन्दी विभाग, रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, विद्या विहार, भुवनेश्वर, ओड़िशा, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12178

सारांश
प्रस्तुत शोध आलेख आधुनिक हिन्दी साहित्य की बहुआयामी लेखिका कृष्णा सोबती के एकमात्र परंतु महत्वपूर्ण यात्रा साहित्य "बुद्ध का कमंडल लद्दाख़" का सर्वांगीण विश्लेषण है। सोबती जी ने हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री–विमर्श, विभाजन की त्रासदी, सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यबोध आदि प्रसंगों तथा अपने अनोखे भाषिक प्रयोगों से हिन्दी साहित्य जगत में अपना स्वतंत्र स्थान बनाया है। यात्रा साहित्य की विधा में भी अपनी कलम चला कर हिन्दी यात्रा साहित्य की परंपरा में एक नया प्रतिमान स्थापित किया है। मूलतः यात्रा साहित्य की विधा में पुरुष यात्राकारों का वर्चस्व महिला यात्राकारों की तुलना में अधिक रहा है। परंतु कृष्णा सोबती जैसी प्रतिभाशाली हस्ती के आविर्भाव से हिन्दी यात्रा साहित्य की बहुतायत समृद्धि हुई है। कृष्णा सोबती द्वारा सृजित "बुद्ध का कमंडल लद्दाख़" उनकी लद्दाख़ यात्रा के अनुभवों पर केंद्रित हैं, जो प्रत्येक दृष्टिकोण से यात्रा साहित्य की परंपरा में एक सफल नवीन प्रयोग है। प्रस्तुत शोध आलेख इस बात का प्रतिपादन करता है कि यह यात्रा साहित्य अपने यात्रा–वर्णन, भौगोलिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आयामों के विस्तृत चित्रण तथा अद्वितीय शब्द–चित्र के समन्वय से हिन्दी यात्रा साहित्य के लिए एक विशेष उपहार है।

मूल शब्दः यात्रा साहित्य, पुरुष यात्राकार, महिला यात्राकार, कृष्णा सोबती, लद्दाख़ यात्रा, भौगोलिक, प्राकृतिक, बौद्ध धर्म–दर्शन–संस्कृति, शब्द–चित्र, विशिष्ट

यात्रा साहित्य हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। प्राचीन काल से ही यात्रा विषयक वर्णन साहित्य की विविध विधाओं में यत्र–तत्र देखने को मिलते हैं। परंतु एक स्वतंत्र विधा के रूप में इसका विकास व समृद्धि आधुनिक काल से ही हुआ है। कालांतर में यात्रा साहित्य की जो एक समृद्ध परंपरा का विकास हुआ है, इसका नेतृत्व मूलतः राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, मोहन राकेश एवं निर्मल वर्मा जैसे अग्रणी यात्राकारों ने किया है। इन यात्राकारों ने अपने यात्रा साहित्य में 'यात्रा' को ज्ञान, अन्वेषण, धर्म, संस्कृति, संवेदना, आत्मान्वेषण तथा अस्तित्वबोध आदि के विविध रूप में चित्रित किया है। मुख्यतः हिन्दी यात्रा साहित्य की परंपरा में पुरुष यात्राकारों का प्रभुत्व स्त्री यात्राकारों से अधिक ही रहा है। किन्तु जिन–जिन कालखंडों में स्त्री यात्राकारों का आगमन हुआ है तब–तब हिन्दी यात्रा साहित्य में क्रांतिकारी परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। इसका उपयुक्त उदाहरण हरदेवी जी का यात्रा साहित्य है, "मुद्रण–कला विकास पर आ ही रही थी, पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने के अतिरिक्त धीरे–धीरे यात्रा–साहित्य के ग्रंथों का मुद्रण भी प्रारंभ हुआ। इस मुद्रित रूप में यात्रा–साहित्य का सर्वप्रथम ग्रंथ जो हमें देखने को मिल सका है वह 'लंदन यात्रा' नाम से है। इसकी लेखिका हरदेवीजी हैं। इनकी यह पुस्तक औरिएंटल प्रेस, लाहौर से सन् 1883 ई. में प्रकाशित हुई थी।"[1]

वस्तुतः प्राचीन काल से ही हमारे भारतवर्ष में 'स्त्री' एवं 'यात्रा' इन दोनों का एक साथ संपृक्त होना अपने आप में एक विवाद का विषय बना रहा है। उसपर एक स्त्री का यात्रा करना और अपनी यात्रानुभूति पर लिखना एक असामान्य घटना जैसे प्रतीत होता है। जबकि यात्रा करना मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वहाँ स्त्री–पुरुष जैसे भेद–भाव के लिए कोई भी स्थान नहीं होता है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने 'घुमक्कड़ शास्त्र' में उल्लेख किया है कि, "घुमक्कड़–धर्म सार्वदेशिक विश्वव्यापी धर्म है। इस पंथ में किसी के आने की मनाही नहीं है, इसलिए यदि देश की तरुणियाँ भी घुमक्कड़ बनने की इच्छा रखें, तो यह खुशी की बात है। स्त्री होने से वह साहसहीन है, उसमें अज्ञात दिशाओं और देशों में विचरने के संकल्प का अभाव है – ऐसी बात नहीं है– जहाँ स्त्रियों को अधिक दासता की बेड़ी में जकड़ा नहीं गया, वहाँ की स्त्रियाँ साहस–यात्राओं से बाज नहीं आतीं। अमेरिकन और यूरोपीय स्त्रियों का पुरुषों की तरह स्वतंत्र हो देश–विदेश में घूमना अनहोनी–सी बात नहीं है।"[2] वास्तव में यायावरी तथा घुमक्कड़ी को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु कही गई है। "घुमक्कड़ी–धर्म से बढ़कर दुनिया में धर्म नहीं है।"[3] इसीलिए अपने जीवन में 'यात्रा' करने का अधिकार जितना पुरुषों को है, उतनी ही स्त्रियों को भी है। किन्तु दुर्भाग्यवश पितृसत्तात्मक समाज, आर्थिक पराधीनता, कुत्सित मानसिकता, विविध पावंद तथा स्त्री–असुरक्षा के कारण स्त्रियाँ अपनी यायावरी प्रवृत्ति से वंचित रह जाती हैं। हिन्दी यात्रा साहित्य के सम्राट राहुल सांकृत्यायन जैसे महान घुमक्कड़ ने स्त्री घुमक्कड़ी को महत्व देते हुए कहा है कि, "कोई कोई महिलाएँ पूछती हैं– क्या स्त्रियाँ भी घुमक्कड़ी कर सकती हैं, क्या उनको भी इस महाव्रत की दीक्षा लेनी चाहिए? इसके बारे में तो अलग अध्याय ही लिखा जाने वाला है, किन्तु यहाँ इतना कह देना है कि घुमक्कड़–धर्म ब्राह्मण–धर्म जैसा संकुचित धर्म नहीं है जिसमें स्त्रियों के लिए स्थान नहीं हो। स्त्रियाँ इसमें उतना ही अधिकार रखती हैं जितना पुरुष। यदि वह जन्म सफल करके व्यक्ति और समाज के लिए कुछ करना चाहती हैं, तो उन्हें भी दोनों हाथों से इस धर्म को स्वीकार करना चाहिए। घुमक्कड़ी–धर्म छुड़ाने के लिए ही पुरुष ने बहुत से बंधन नारी के रास्ते में लगाये हैं। बुद्ध ने सिर्फ पुरुषों के लिए घुमक्कड़ी करने का आदेश नहीं दिया, बल्कि स्त्रियों के लिए भी उनका वही उपदेश था।"[4]

विशेषतः समयक्रम के साथ शिक्षा, आधुनिकता, तकनीकी प्रयोग तथा अपनी आर्थिक स्वतंत्रता आदि के कारण स्त्रियाँ भी यात्रा करती हुई नजर आती हैं। "आधुनिकयुग की नारी एवरेस्ट–चढ़ने से लेकर 'नंदा देवी' जैसी 'स्त्री–वर्जित पहाड़ी' की यात्रा करती है बल्कि तमाम मुश्किलों का सामना करते हुए वह दुनिया भ्रमण पर निकल पड़ी है। धर्म रूढ़ियों, अन्धविश्वासी मान्यताओं, पितृसत्तात्मक वर्जनाओं को धता बताते हुए 'आज़ादी मेरा ब्रांड' का ठप्पा लगाये भटकती फिरती है!"[5]

प्रमुखतः हिन्दी साहित्य जगत में बहुत–सी ऐसी लेखिकाएँ भी हैं जिनके लेखन का आधार 'यात्रा' से जुड़ी हैं। प्रमुख रूप से हिन्दी यात्रा साहित्य की विधा में भले ही बहुत कम परंतु यात्रा साहित्य सृजन की श्रेणी में स्त्री यात्राकारों का गुणात्मक महत्व रहा है। इसी परंपरा में कृष्णा सोबती जैसी प्रतिभाशाली लेखिका एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। 18 फरवरी, सन् 1925 ई. में अविभाजित भारत के पंजाब प्रांत के गुजरात (अब पाकिस्तान का हिस्सा) में जन्मी कृष्णा सोबती ने हिन्दी साहित्य को 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'जिंदगीनामा', 'यारों के यार', 'दिलो दानिश', 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' जैसी कालजयी रचनाओं से समृद्ध किया है। उनके द्वारा सृजित कथा साहित्य पर तो बहुत शोध कार्य हो रहे हैं, परंतु उनके यात्रा साहित्य पर बहुत कम ही दृष्टि पड़ी है। जिन पर स्वतंत्र रूप से शोध कार्य होने चाहिए। मूलतः सोबती जी अपने साहित्यिक जीवन के उतरार्द्ध में यात्रा साहित्य की विधा में अवतरित हुईं। उनकी एक मात्र परंतु प्रभावशाली यात्रा साहित्य 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' यात्रा साहित्य की परंपरा में एक नवीन व सफल प्रयोग है। उनकी यात्रा परक अभिव्यक्ति अपने आप में अनूठी एवं मौलिक है। सन् 2012 ई. में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली के द्वारा प्रकाशित 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' कृष्णा सोबती जी की लद्दाख़ यात्रा पर आधारित है। इस यात्रा की सबसे रोचक बात यह है कि सोबती जी बिना किसी पूर्व योजना के इस यात्रा पर निकल पड़ीं और उनकी यह लद्दाख़ यात्रा इतनी विशेष रहीं कि हिन्दी यात्रा साहित्य को 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' जैसी कृति प्राप्त हुई। सोबती जी की लद्दाख़ यात्रा का मूल कारण उनकी जिज्ञासा प्रवृत्ति एवं अध्ययनशीलता रहीं। स्वयं सोबती जी के शब्दों में, "रात शहिस्ट्री ऑफ लद्दाखश के पन्ने पलटे तो अपनी मूर्खता पर हँसी। दिल्ली में यह निर्णय कि मदन गोपाल साहिब की शहिमालय आर्ट' लेह देख आने पर पढ़ूँगी। जैसे लेह भी दार्जिलिंग, शिलांग, नैनीताल जैसा शहर हो जिसकी स्थानीयता को आप स्वयं अपने यात्री अनुभवों से देख सकें और अपनी चेतना में समेट लें।"[6]

मूलतः प्रत्येक यात्राकार की यात्रानुभूति एवं उनके द्वारा लिखित यात्रा साहित्य स्वयं में विशेष होते हैं। सभी यात्रा साहित्यकार अपने–अपने वर्ण्य–विषय तथा अभिव्यक्ति कौशल से यात्रा साहित्य के जगत में अपना स्वतंत्र स्थान बनाए हुए हैं। अतः इस आलेख का उद्देश्य कृष्णा सोबती जी के द्वारा सृजित यात्रा साहित्य 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' का सर्वांगीण विश्लेषण कर उसकी विविध विशिष्टताओं को उजागर करना है। विशेषतः हिन्दी यात्रा साहित्य की परंपरा में कृष्णा सोबती अपनी विशिष्ट शैली के लिए पहचानी जाती हैं। रंगीन पृष्ठों, सजावटों तथा चित्ताकर्षक चित्रों एवं रेखाचित्रों से सुसज्जित उनका यात्रा साहित्य शब्द–चित्र का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत करता है, जो इसे एक 'विजुअल ट्रेवलॉग' जैसा रूप देता है। सिद्धार्थ और सरबजीत सिंह बावरा के द्वारा खींचे गए लद्दाख़ के सूर्योदय, सूर्यास्त, विराट बर्फ से ढंके पहाड़ों, बौद्ध गोम्पाओं आदि चित्रों तथा उसपर सोबती जी के यात्रा वर्णनों से शब्द–चित्र का जो मिश्रित रूप प्रस्फुटित होता है, वहाँ शब्द चित्र बन जाते हैं और चित्र जैसे बोलने लगते हैं। इसे हिन्दी यात्रा साहित्य में कृष्णा सोबती जी का एक सफल नवीन प्रयोग कहा जा सकता है, जो यात्रा साहित्य की परंपरा को आधुनिकता और एक नवीन आयाम तक पहुँचाता है। हिन्दी के प्रसिद्ध वरिष्ठ पत्रकार, लेखक व समीक्षक के अनुसार, "कृष्णा सोबती अपनी अनूठी कलम लिए एक रोज दिल्ली से लेह को चल दीं। वे अपनी पैनी और सहृदय नजर से लेह के बाजार, महल, दुकानें, लोग, गुरुद्वारे, पुस्तकालय, प्रशासन, प्रकृति सबको निहारती चलती हैं। हर पन्ने पर रंगीन तस्वीरें, रेखांकन, वाक्यांश कृष्णाजी के गद्य की शोभा बढ़ाते हैं। यह यात्रा इतनी सुरुचिपूर्ण है कि हिंदी में शायद ही कोई और यात्रा–संस्मरण इस रूप में छपा होगा।"[7]

वस्तुतः कृष्णा सोबती जी की इस लद्दाख़ यात्रा का आकर्षण केवल भौगोलिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि वह यहाँ की प्राकृतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा दार्शनिक पक्षों को भी गहराई से अनुभव करती हैं। उनके लिए यह लद्दाख़ यात्रा बहुत कुछ यात्रापरक उत्सुकता एवं आध्यात्मिक संवेदना से जुड़ी हैं, जहाँ लद्दाख़ उनके लिए केवल एक भौगोलिक स्थल नहीं बल्कि एक जीवंत अस्तित्व की भाँति प्रतीत होता है। हिमालय की महान गाथा का वर्णन करती हुई सोबती जी लिखती हैं, "ऊँचाइयों के गहरे सर्द ताप के मौन गाम्भीर्य से सृजित महान हिमालय का भौगोलिक स्थापत्य हमारे देश का मस्तक है, हमारी सीमाओं का संरक्षक है। हिमालय देश की चारों दिशाओं में फैले भारतीय जनमानस का भौगोलिक, आध्यात्मिक स्त्रोत है। शिखरों पर स्थित तीर्थों का पवित्र प्रतीक है। भारतीय मन की रुचियों को उद्वेलित करती कलात्मक अभिव्यक्तियाँ इसी उद्‌गम से निकली नदियों के साथ–साथ प्रवाहित होती रही हैं। भारत–भूमि और उसके नागरिकों के मानस को सींचती रही हैं। हिमालय हमारे भूगोल और इतिहास का महानायक है। हमारी संस्कृति और इतिहास की महागाथा है।"[8]

संभवतः 'यात्रा' का मुख्य आकर्षण प्रकृति की पुकार में निहित है। लद्दाख़ अपनी प्राकृतिक सुषमा के लिए सुप्रसिद्ध है। सोबती जी ने अपने यात्रा साहित्य में लद्दाख़ की इस प्राकृतिक सुषमा को उसकी सर्वोपरि रूप में चित्रित किया है। हिमालय की स्वायत्तता, विराट पर्वत शृंखलाएँ, लेह गोम्पाएँ, हैमिस, फियांग, लामायूरू, आलची गोम्पा, मानसरोवर, ससपोल, खारदूलांग जैसे स्थलों का प्रकृति वर्णन इस यात्रा साहित्य की विशिष्टता का प्रामाणिक रूप है। इसके साथ प्रकृति की बिंब योजना को सोबती जी ने इतनी प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है कि वह लद्दाख़ की प्रकृति को अधिक संवेदनशील, सजीव व प्रभावी बनाता है। "इधर–उधर देखा। नजर कभी ऊपर, कभी नीचे। लगा यह लैंडस्केप किसी दूसरी दुनिया का है। दूर–दूर तक चट्टानें–ही–चट्टानें। एक दूसरे से लगी पहाड़ों की शृंखलाएँ, बर्फीले शिखर! नीले आकाश का चंदोवा जैसे यह रहा। इतना नजदीक कि जब चाहें छू लें। दूसरे पर्वतीय स्थानों से कितना अलग। वहाँ चाय बागानों को घेरे हुए पहाड़ों की गाढ़ी, गहरी हरियाली और यहाँ दूर–दूर तक बिछा चट्टानों का विपुल भंडार। वहाँ पहाड़ों में चमचमाते झरने और यहाँ कठोर शुष्क दृश्यावली के विस्तार ही विस्तार। यहाँ प्रकृति द्वारा कम से कम रंगों का चुनाव। ऊपर निर्मल नीला आकाश, श्वेत फेनिल बादलों से सजा और नीचे पीले, रेतीले, मटमैले में स्लेटी ऊँचे बर्फीले शिखरों को लुभाती ग्रे काली ताम्बई और दालचीनी रंग की चट्टानें।"[9] सोबती जी लद्दाख़ के प्राकृतिक दृश्यों को देख कर उत्सुकता पूर्वक कई बार कल्पना लोक में जाती हुई दिखती हैं। "जल, पृथ्वी, पहाड़, फूल, वृक्ष, पशु–पक्षी और धरती के प्राणी – यही है इस लोक की कहानी। कल्पना में इस दृश्य को देखने के लिए मैं आँखें बन्द करती हूँ।" [10]

विशेषतः लद्दाख़ प्राचीन काल से ही बौद्ध धर्म, दर्शन तथा संस्कृति का प्रमुख केंद्र रहा है। यहाँ के जन जीवन का यह एक अभिन्न अंग है। "बौद्ध विश्वास के अनुसार तीन लोक हैं देवताओं का लोक, मानवीय लोक, पाताल लोक। देवताओं के लोक का रंग श्वेत है। धरती पर मानवीय लोक का रंग लाल है। थल के नीचे पानी का पाताल लोक नीले रंग का है।"[11] सोबती जी ने भी प्रस्तुत यात्रा साहित्य का शीर्षक 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' बौद्ध दर्शन व संस्कृति के प्रतिकार्थ में लिया है। 'कमंडल' से तात्पर्य उस पात्र से है– जहाँ बौद्ध सन्यासी जल, भोजन आदि आवश्यक वस्तुएँ रखा करते हैं। यह त्याग, भौतिक जगत से वैराग्य तथा आत्म–शुद्धि का प्रतीक है। लद्दाख़ को 'बुद्ध का कमंडल' कहने

का आशय यह है कि यह स्थान एक पवित्र पात्र जैसा है जिसमें बौद्ध के धर्म, दर्शन और संस्कृति संरक्षित हैं।

"लद्दाख कई नामों से जाना जाता रहा है
मारयुल (लाल धरती)
मांगयुल (बहुत से लोगों का घर)
की–खाछान–पा (बर्फ की धरती)।

इतिहासकारों के मत के अनुसार प्रसिद्ध चीनी यात्री ने इस प्रदेश का जिक्र इसी नाम से किया है। इसे बुद्ध का कमण्डल भी कहा जाता है।"[12] लद्दाख़ में हैमिस, फियांग, थिकसे, आलची, शे, लामायूरू आदि अनेक बौद्ध गोम्पाएँ हैं, जिनका वर्णन सोबती जी ने अपने यात्रा साहित्य में विस्तृत रूप से किया है। उनके प्रत्येक गोम्पाओं तथा मठों के यात्रानुभव अलग रहे हैं। प्रत्येक की वास्तुकला, भित्तिचित्र, बौद्ध लामाओं के समुदाय एवं दार्शनिक–आध्यात्मिक वातावरण आदि की अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं। "लद्दाख में अनेक बौद्ध विहार हैं और उनमें निवास करनेवाले असंख्य लामा। इन विहारों में अपूर्व भित्तिचित्र, दुर्लभ मूर्तियाँ और हस्तलिखित अनमोल ग्रन्थ बौद्ध धर्म की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सुरक्षित हैं। इन गोम्पाओं में प्रवेश करते ही यहाँ के हल्के उजालों से अन्तरमन सघन और आत्मिक हो उठते हैं। कुछ ऐसा महसूस करते हैं कि हम जो भी देख रहे हैं– मात्र दर्शक के रूप में ही नहीं, उसमें प्रवेश कर उस समयातीत अनुभूति का आभास होने लगता है जो गोम्पाओं के स्थापत्य में सुरक्षित है।"[13]

कृष्णा सोबती जी की भाषा–शैली उनके लेखन का सबसे बड़ा आधार रहा है। प्रस्तुत यात्रा साहित्य में उनकी यह विशेषता पूरी तरह से प्रकट होती है। प्रसंगानुकूल भाषाओं के प्रयोग कई स्तरों पर काम करते हैं। जैसे– विराट हिमालय के वर्णन के लिए हिंदी की संस्कृतनिष्ठ शब्दावली, लद्दाख़ की बौद्ध संस्कृति व जन–जीवन के वर्णन के दौरान लद्दाख़ी–तिब्बती शब्दों (गोम्पा, थंगका, लामा, जुले–जुले आदि) का प्रयोग एवं बीच–बीच में उर्दू, पंजाबी तथा अंग्रेजी शब्दावलियों की पुट इस यात्रा साहित्य को नवीन ऊँचाइयों तक ले जाती है। "दूर से पताकाएँ दीखने लगी थीं। लामायूरू। इस शब्द को खामोशी से दोहराती हूँ। यह शब्द और इसकी ध्वनि लद्दाख क्षेत्र की प्रतीक है।"[14] शैली के संदर्भ में 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' अपनी बहुत सी विशेषताओं से युक्त है। जैसे– संवाद की नाटकीयता, स्वाभाविक गति, वाक्य रचना में लय एवं ताल, छोटे–छोटे वाक्य फिर एक लंबा वाक्य तथा बीच–बीच में कविताओं का अप्रत्याशित आना पाठकों को सहज ही प्रारंभ से लेकर अंत तक अपने साथ उत्सुकता से जोड़ कर रखता है।

"जो भी देखो, ऐसे देखो जैसे जीवन में पहली बार देख रहे हो –
फिर ऐसे देखो जैसे जीवन में अन्तिम बार देख रहे हो।
वही।
बुद्ध के कमण्डल में उदय होती उषा को मानो पहली बार देख रही हूँ–देख रही हूँ अन्तिम बार भी जैसे हिमालय के पीछे से फैलती लालिमा को हमारे पूर्वजों ने देखा था।"[15]

निष्कर्ष

मूलतः कृष्णा सोबती जी का 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' हिंदी यात्रा साहित्य के इतिहास में एक मील का पत्थर है। सोबती जी का लद्दाख़ यात्रा वर्णन एवं उसके साथ रंगीन छायाचित्रों का संगम हिन्दी यात्रा साहित्य की परंपरा में एक अनूठा प्रयोग रहा है। एक ओर लद्दाख़ की भौगोलिक, प्राकृतिक, बौद्ध धर्म, दर्शन तथा संस्कृति आदि के प्रति सोबती जी के गहन वैचारिक दृष्टिकोण हैं तथा दूसरी ओर प्रत्येक दिन एक नए स्थान, नई खोज, नए अनुभव में सोबती जी की यात्रापरक उत्सुकता जो पाठकों को भी अपने साथ यात्रा कराता है। प्रस्तुत यात्रा साहित्य न केवल भविष्य के यात्राकारों के लिए एक प्रेरणास्रोत है, बल्कि यह लद्दाख़ को संपूर्ण रूप से समझने के लिए एक दस्तावेज का कार्य भी करता है। अतः कृष्णा सोबती जी ने अपने एकमात्र यात्रा साहित्य से हिन्दी यात्रा साहित्य के इतिहास में एक सशक्त यात्राकार के रूप में अपना स्वतंत्र स्थान बनाया है। उनका 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' हिन्दी यात्रा साहित्य के लिए एक विशेष देन है, जो अपनी अनोखी भाषा–शैली, बिंब योजना तथा लद्दाख़ के विविध पक्षों के विस्तृत वर्णनों का एक गहन साहित्यिक अनुभव है।

संदर्भ

1. डॉ. सुरेन्द्र माथुर : यात्रा साहित्य का उद्‌भव और विकास, साहित्य प्रकाशन, पृ. 92
2. राहुल सांकृत्यायन : स्त्री घुमक्कड़, घुमक्कड़ शास्त्र, किताब महल, सं.1948 ई., पृ. 50
3. राहुल सांकृत्यायन : अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा, घुमक्कड़ शास्त्र, किताब महल, सं.1948 ई., पृ. 11
4. वही, पृ. 09
5. वृजेश कुमार यादव : 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख़' और कृष्णा सोबती का यात्री–दृष्टिकोण, अपनी माटी, अंक–62, अक्टूबर–दिसंबर 2025, पृ. 238
6. कृष्णा सोबती : बुद्ध का कमंडल लद्दाख़, राजकमल प्रकाशन, सं. 2012 ई., पृ. 20
7. ओम थानवी : हिन्दी के श्रेष्ठ यात्रा संस्मरण, जनसत्ता, 15 सितंबर, 2013 ई.
8. कृष्णा सोबती : बुद्ध का कमंडल लद्दाख़, राजकमल प्रकाशन, सं. 2012 ई., पृ. 08
9. वही, पृ. 16
10. वही, पृ. 40
11. वही, पृ. 46
12. वही, पृ. 38
13. वही, पृ. 113
14. वही, पृ. 89
15. वही, पृ. 170